IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 3, Series 2 (March, 2019) 93-99
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

''प्राकृतिक संसाधनों का संपोषित प्रबन्धन–एक शोधपरक अध्ययन''

डॉ. श्रीचन्द
असि.प्रोफेसर, एम.एस.जे. भूगोल विभाग, राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर

प्रस्तावना :

प्रकृति के साथ सद्भाव में रहना हमारे लिए नया नहीं है। जीवन हमेशा देश की परम्परा और संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। यह हमारी संपोषित लम्बी परम्पराओं, प्रथाओं, रीति–रिवाजों, कला व शिल्प, त्यौहार, भोजन, आस्थाओं, अनुष्ठान व लोकगीत के साथ एकीकृत है। यह दर्शन है कि ***'सम्पूर्ण प्राकृतिक संसार सद्भाव में रहे*** जो संस्कृत के प्रसिद्व वाक्यांश ***''वसुधैव कुटुम्बकम***' में परिलक्षित होता है। जिसका अर्थ है '***'सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार है।''*** इस वाक्यांश का उल्लेख महाउपनिषद् में मिलता है जो शायद प्राचीन भारतीय साहित्य ***''अथर्ववेद''*** का एक हिस्सा है।

संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन से उत्पन्न समस्याओं के विषय में जागरूकता हमारे समाज में अपेक्षाकृत एक नया आयाम है। जब यह जागरूकता बढ़ती है तो कुछ न कुछ कदम भी उठाए जाते हैं। शोध कार्य में गंगा सफाई योजना के विषय में वर्णन किया है।

शब्द बीज: संपोषित परम्पराओं, वसुधैव कुटुम्बकम, अथर्ववेद, भारतीय साहित्य, अविवेकपूर्ण दोहन।

गंगा का प्रबन्धन :

गंगा हिमालय में स्थित अपने उद्गम गंगोत्री से बंगाल की खाड़ी में गंगा सागर तक 2500 किमी. तक की यात्रा करती है। इसके किनारे स्थित उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल के 100 से भी अधिक नगरों ने इसे एक नाले में बदल दिया है। इसका मुख्य कारण इन नगरों द्वारा उत्सर्जित कचरा एवं मल का इसमें प्रवाहित किया जाना है। इसके अतिरिक्त मानव के अन्य क्रियाकलाप है। जैसे–नहाना, कपड़े धोना, मृत व्यक्तियों की राख एवं शवों को बहाना इत्यादि।

कई करोड़ की यह योजना करीब 1985 में इसलिए प्रारंभ की गई, क्योंकि गंगा के जल की गुणवत्ता बहुत कम हो गई थी। कोलिफार्म जीवाणु का एक वर्ग है जो मानव की आंत्र में पाया जाता है, जल में इसकी उपस्थिति, इस रोगजन्य सूक्ष्म जीवाणु द्वारा जल का संदूषित होना दर्शाता है।

यही नहीं उद्योगों द्वारा उत्पादित रासायनिक उत्सर्जन ने गंगा का प्रदूषण–स्तर इतना बढ़ा दिया है कि इसके विषैले आदि कारण हैं। इससे जल में मछलियाँ मरने लगी है। '***नमामि गंगे***' कार्यक्रम जून 2014 में केन्द्र सरकार द्वारा एक प्रमुख कार्यक्रम के रूप में अनुमोदित एक एकीकृत संरक्षण मिशन है। यह प्रदूषण और राष्ट्रीय नदी गंगा के कायाकल्प के प्रभावी न्यूनीकरण के दो उद्देश्यों को पूरा करने के लिए शुरू किया गया था। स्वच्छ गंगा के लिए '***राष्ट्रीय मिशन***' कार्यान्वयन विंग है, जिसे अक्टूबर, 2016 में स्थापित किया गया था।

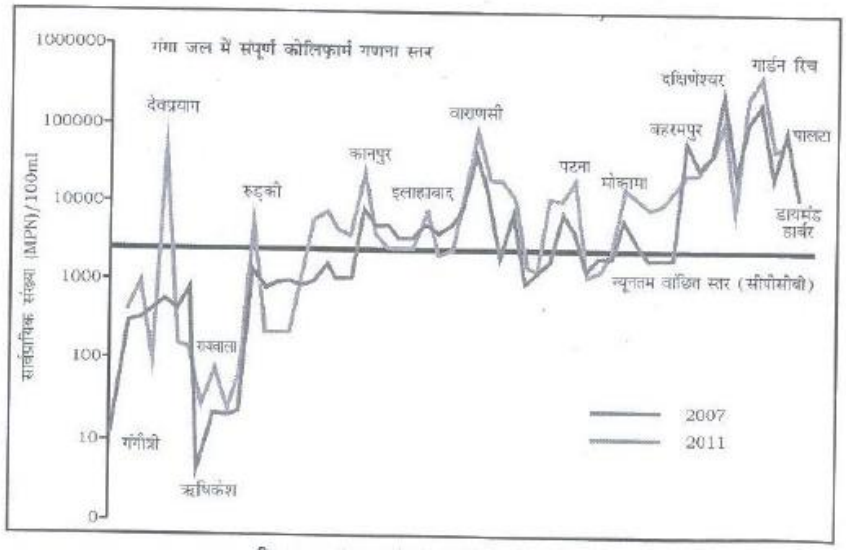

स्रोतः केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, 2012

गंगा जल में सम्पूर्ण कोलिमार्फ गणना स्तर

प्रदूषण का वैज्ञानिक मापनः

सर्वसूचक ;न्दपअमतेंस प्दकपबंजवतद्ध की सहायता से अपने घर में पानी का चभ ज्ञात कीजिए। अपने अड़ौस–पड़ौस के जलाशय (तालाब, झील, नदी, झरने) का चभ भी ज्ञात कीजिए। अपने प्रेक्षणों के आधार पर बता सकते हैं कि जल प्रदूषित है, अथवा नहीं।

समस्या के विशाल रूप को देखकर हताश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसे अनेक कार्य है जिनके द्वारा हम स्थिति में अंतर ला सकते है। पर्यावरण को बचाने के लिए पांच प्रकार के श्त्श के विषय में सुना है। त्मनिम (इनकार), त्मकनबम (कम उपयोग), त्मेनम (पुनः उपयोग), त्मचनतचवेम (पुनः प्रयोजन) और त्मबलबसम (पुनः चक्रण)।

अपनी दैनिक आवश्यकताओं और क्रियाकलापों पर निर्णय लेते समय पर्यावरण संबंधी निर्णय ले सकते हैं। इसके चयन से पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। ये प्रभाव तात्कालिक दीर्घकालिक अथवा व्यापक हो सकते हैं। संपोषित विकास की संकल्पना मनुष्य की वर्तमान आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं विकास को प्रोत्साहित करती है।

भावी संतति के लिए संसाधनों का संरक्षण भी करती है। आर्थिक विकास पर्यावरण संरक्षण से संबंधित है। अतः संपोषित विकास से जीवन के सभी आयाम में परिवर्तन निहित है। यह लोगों के ऊपर निर्भर है कि वे अपने चारों ओर के आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय स्थितियों के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाएँ। प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति के संसाधनों के वर्तमान उपयोग में परिवर्तन के लिए तैयार रहना जरूरी होगा।

संपोषित प्रबन्धन की प्रक्रिया :

संसाधनों की सावधानीपूर्वक (विवेकपूर्ण ढंग से) उपयोग की आवश्यकता है, क्योंकि यह संसाधन असीमित नहीं हैं। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण हमारी जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण सभी संसाधनों की माँग भी कई गुना तेजी से बढ़ी है।

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करते समय दीर्घकालिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखना होगा। ये अगली कई पीढ़ियों तक उपलब्ध हो सकें। संसाधनों का अर्थ उनका दोहन अथवा शोषण नहीं है। इस प्रबंधन में इस बात को भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि इनका वितरण सभी वर्गों में समान रूप से हो, न कि मात्र मुट्ठी भर अमीर और शक्तिशाली लोगों को इनका लाभ मिले। संसाधनों का दोहन करते हैं तो हम पर्यावरण को क्षति पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए, खनन से प्रदूषण होता है क्योंकि धातु के निष्कर्षण के साथ–साथ बड़ी मात्रा में धातुमल भी निकलता है। अतः संपोषित प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में अपशिष्टों के सुरक्षित निपटान की व्यवस्था होनी चाहिए।

संपोषित विकास व प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की वर्तमान वैश्विक चिंताएँ हमारे देश में प्राकृतिक संरक्षण की लंबी परंपरा व संस्कृति की तुलना में हाल ही की हैं। पूर्व ऐतिहासिक भारत में प्रकृति संरक्षण व संपोषित विकास के सिद्धांत की स्थिरता अपने सबसे अच्छे रूप में स्थापित की गई थी। हमारा प्राचीन साहित्य उदाहरणों से भरा है जहाँ मूल्य और प्रकृति के प्रति मनुष्य की संवेदनशीलता की महिमा और सिद्धांत की स्थिरता अपने सबसे अच्छे रूप में स्थापित की गई थी।

वैदिक काल के दौरान जंगल वनस्पति के उत्पादक व साथ ही सुरक्षात्मक पहलू, दोनों पर बल दिया गया। वैदिक काल के अंत में कृषि एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि के रूप में उभरी। यह वह समय था जब पवित्र जंगलों, गुफाओं, गलियारों व विभिन्न प्रकार की जातीय वानिकी प्रथाओं जैसी सांस्कृतिक परिदृश्य की अवधारणाएँ विकसित हुई। जो वैदिक काल के बाद भी लगातार चलती रहीं। साथ ही व्यापक श्रेणी की जातीय वानिकी प्रथाओं को परंपराओं, प्रथाओं व अनुष्ठानों के साथ एकीकृत करते हुए, प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा की जाती रही।

वन एवं वन्य जीवन :

वन जैव विविधता के '***विशिष्ट (भ्वजेचवेजे) स्थल*** हैं। जैव विविधता का एक आधार उस क्षेत्र में पाई जाने वाली विभिन्न स्पीशीज की संख्या है। परंतु, जीवों के विभिन्न स्वरूप (जीवाणु, कवक, फर्न, पुष्पी पादप, सूत्रकृमि, कीट, पक्षी, सरीसृप इत्यादि) भी महत्वपूर्ण हैं। वंशागत जैव विविधता को संरक्षित करने का प्रयास प्राकृतिक संरक्षण के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। प्रयोगों और वस्तुस्थिति के अध्ययन से पता चलता है कि विविधता के नष्ट होने से पारिस्थितिक स्थायित्व भी नष्ट हो सकता है।

वनों की प्राकृतिक छवि में मनुष्य का हस्तक्षेप बहुत अधिक है। इस हस्तक्षेप की प्रकृति एवं सीमा को नियंत्रित करना होगा। वन संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना होगा जो पर्यावरण एवं विकास दोनों के हित में हो। दूसरे शब्दों में, जब '***पर्यावरण अथवा वन संरक्षित किए जाएँ, उसके सुनियोजित उपयोग का लाभ स्थानीय निवासियों को मिलना चाहिए।'***

यह विकेंद्रीकरण की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिक संरक्षण दोनों साथ–साथ चल सकते हैं। जिस प्रकार का आर्थिक एवं सामाजिक विकास चाहते हैं, उससे ही अंततः यह निर्णय होगा कि उससे पर्यावरण का संरक्षण हो रहा है। अथवा इसका और विनाश हो रहा है। पर्यावरण को पौधों और जंतुओं का सजावटी

संग्रह मात्र नहीं माना जा सकता। यह एक जटिल व्यवस्था है जिससे उपयोग हेतु अनेक प्रकार के प्राकृतिक संसाधन प्राप्त होते हैं। अपने आर्थिक एवं सामाजिक विकास की आपूर्ति हेतु इन संसाधनों का सावधानीपूर्वक उपयोग करना होगा।

उपरोक्त सभी दावेदारों के लक्ष्य वन प्रबंधन के संदर्भ में समान हैं। उद्योगों को वन संपदा अधिकतर बाजार के मूल्य से बहुत कम मूल्य पर उपलब्ध कराई जाती है। जबकि स्थानीय निवासियों को उनसे वंचित रखा जाता है। ***'चिपको आंदोलन*** स्थानीय निवासियों को वनों से अलग करने की नीति का ही परिणाम है।

प्राकृतिक संसाधनों के नियंत्रण की इस प्रतियोगिता में पुनः पूर्ति होने वाले इन संसाधनों का संरक्षण अंतर्निहित है। इसी उद्देश्य से उनके उपयोग के तरीके पर प्रश्न उठाए गए। लकड़ी के ठेकेदार ने उस क्षेत्र के सारे वृक्षों को काट कर गिरा दिया होता और वन क्षेत्र सदा के लिए वृक्षहीन हो जाता। स्थानीय समुदाय, वृक्षों के ऊपर चढ़कर कुछ शाखाएँ एवं पत्तियाँ ही काटता है जिससे समय के साथ–साथ उनका पुनः पूरण भी होता रहता है।

'चिपको आंदोलन' बहुत तेजी से बहुत से समुदायों में फैल गया एवं जन संचार ने भी इसमें योगदान दिया तथा सरकार को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि वन किसके हैं। वन संसाधनों के समुचित उपयोग के लिए प्राथमिकता तय करने के लिए पुनर्विचार पर मजबूर कर दिया। अनुभव ने लोगों को सिखा दिया है कि वनों के विनाश से केवल वन की उपलब्धता ही प्रभावित नहीं होती वरन् मिट्टी की गुणवत्ता एवं जल स्रोत भी प्रभावित होते हैं। स्थानीय लोगों की भागीदारी से निश्चित रूप से वनों के प्रबंधन की दक्षता बढ़ेगी।

वन विभाग के एक दूरदर्शी अधिकारी ए.के. बनर्जी ने ग्रामीणों को अपनी योजना में शामिल किया। उनके सहयोग से बुरी तरह से क्षतिग्रस्त वन की 1272 हेक्टेयर क्षेत्र का संरक्षण किया। इसके बदले में निवासियों को क्षेत्र की देखभाल की जिम्मेदारी के लिए रोजगार मिला। साथ ही उन्हें वहाँ से उपज की 25 प्रतिशत के उपयोग का अधिकार भी मिला। बहुत कम मूल्य पर ईंधन के लिए लकड़ी और पशुओं को चराने की अनुमति दी गई। स्थानीय समुदाय की सहमति एवं सक्रिय भागीदारी से 1983 तक अरावाड़ी का सालवन समृद्ध हो गया। बेकार कहे जाने वाले वन का मूल्य 12.5 करोड़ आँका गया।

अंग्रेजों ने भारत आकर अन्य बातों के साथ–साथ इस पद्धति को भी बदल दिया। बड़ी परियोजनाओं जैसे कि विशाल बाँध तथा दूर तक जाने वाली बड़ी–बड़ी नहरों की सर्वप्रथम संकल्पना कर उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य भी अंग्रेजों द्वारा ही किया गया। जिसे हमारे स्वतंत्र होने पर हमारी सरकार ने भी पूरे जोश के साथ अपनाया। इन विशाल परियोजनाओं से सिंचाई के स्थानीय तरीके उपेक्षित होते गए। सरकार धीरे–धीरे इनका प्रबंधन एवं प्रशासन अपने हाथ में लेती चली गई जिससे जल के स्थानीय स्रोतों पर स्थानीय निवासियों का नियंत्रण समाप्त हो गया।

बाँध प्रबन्धन :

बड़े बाँध में जल संग्रहण पर्याप्त मात्रा में किया जा सकता है जिसका उपयोग केवल सिंचाई के लिए ही नहीं वरन् विद्युत उत्पादन के लिए भी किया जाता है। इनसे निकलने वाली नहरें जल की बड़ी मात्रा को दूरस्थ स्थानों तक ले जाती हैं। उदाहरणतः, इंदिरा गांधी नहर से राजस्थान के काफी बड़े क्षेत्र में हरियाली आ गई है। परंतु जल के खराब प्रबंधन के कारण मात्र कुछ व्यक्तियों द्वारा लाभ उठाने के कारण जल प्रबंधन के लाभ से बहुत से लोग वंचित रह गए हैं।

जल का समान वितरण नहीं है, अतः जल स्रोत के निकट रहने वाले व्यक्ति गन्ना एवं धान जैसी अधिक जल खपत वाली फसल उगा लेते हैं, जबकि दूर के लोगों को जल मिल ही नहीं पाता। उन व्यक्तियों की व्यथा और भी बढ़ जाती है तथा असंतोष होता है जबकि उन व्यक्तियों को जिन्हें बाँध एवं नहर बनाते समय विस्थापित किया गया। उस समय किए गए वायदे भी पूरे नहीं किए गए।

बड़े बाँध के विरोध में मुख्यतः तीन समस्याओं की चर्चा विशेष रूप से होती है–

1. सामाजिक समस्याएँ, क्योंकि इससे बड़ी संख्या में किसान और आदिवासी विस्थापित होते हैं और इन्हें मुआवजा भी नहीं मिलता।
2. आर्थिक समस्याएँ, क्योंकि इनमें जनता का बहुत अधिक धन लगता है और उस अनुपात में लाभ अपेक्षित नहीं है।
3. पर्यावरणीय समस्याएँ, क्योंकि उससे बड़े स्तर पर वनों का विनाश होता है तथा

विकास की विभिन्न परियोजनाओं में विस्थापित होने वाले अधिकतर व्यक्ति गरीब आदिवासी होते हैं जिन्हें इन परियोजनाओं से कोई लाभ नहीं होता। उन्हें अपनी भूमि एवं जंगलों से भी हाथ धोना पड़ता है। जिसकी क्षतिपूर्ति भी समुचित नहीं होती। 1970 में बने तावा बाँध के विस्थापितों को अभी भी वह लाभ नहीं मिल सके जिनका उनसे वायदा किया गया था।

जल संग्रहण प्रबन्धनः

जल सांभर प्रबंधन में मिट्टी एवं जल संरक्षण पर जोर दिया जाता है जिससे कि 'जैव–मात्रा' उत्पादन में वृद्धि हो सके। इसका प्रमुख उद्देश्य भूमि एवं जल के प्राथमिक स्रोतों का विकास, द्वितीयक संसाधन पौधों एवं जंतुओं का पैदा न हो। जल सांभर प्रबंधन न केवल जल सांभर का सेवा काल भी बढ़ाता है। अनेक संगठन प्राचीन कालीन जल संरक्षण प्रणालियों को पुनर्जीवित करने में लगे हैं जो बाँध जैसी बड़ी परियोजनाओं का विकल्प बन सकते हैं। इन समुदायों ने जल संरक्षण के ऐसे सैकड़ों तरीके विकसित किए हैं जिनके द्वारा धरती पर पड़ने वाली प्रत्येक बूँद का संरक्षण किया जा सके। यथा छोटे–छोटे गड्ढे खोदना, झीलों का निर्माण, साधारण जल संभर व्यवस्था की स्थापना, मिट्टी के छोटे बाँध बनाना. रेत तथा चूने के पत्थर के संग्रहक बनाना तथा घर की छतों से जल एकत्र करना। इससे भूजल स्तर बढ़ जाता है। नदी भी पुनः जीवित हो जाती है।''

एक पारंपरिक प्रौद्योगिकी द्वारा भारत के '***वाटर मैन***' देश के सबसे शुष्क क्षेत्र के सूखाग्रस्त गाँवों के हजारों ग्रामीणों की जिंदगी बदल पाए। दो दशकों के प्रयास के बाद डॉ. राजेन्द्र सिंह ने राजस्थान में पानी इकट्ठा करने के लिए 8600 जोड उत्पादन इस प्रकार करना जिससे पारिस्थितिक अंसतुलन और अन्य संरचनाओं का निर्माण किया तथा राज्य भर के 1000 गाँवों में पानी वापस लाया गया। 2015 में उन्होंने समुदाय का उत्पादन एवं आय बढ़ाई है। उन्होंने सूखे एवं स्टॉकहोम पुरस्कार जीता। यह बहुत ही प्रतिष्ठित पुरस्कार है। निचले बाँध एवं जलाशयों जो इसके निवासियों की भलाई के लिए जल संसाधनों के सुरक्षित संरक्षण में योगदान करने वाले व्यक्ति का सम्मान करता है।

जल संग्रहण ूंजमत ींतअमेजपदहद्ध भारत में बहुत पुरानी संकल्पना है। राजस्थान में खादिन, बड़े पात्र एवं नाड़ी, महाराष्ट्र के बंधारस एवं ताल, मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में बंधिस, बिहार में अहार तथा पाइन, हिमाचल प्रदेश में

कुल्ह, जम्मू के काँदी क्षेत्र में तालाब तथा तमिलनाडु में एरिस (ज्दा) केरल में सुरंगम, कर्नाटक में कट्टा इत्यादि प्राचीन जल संग्रहण तथा जल परिवहन संरचनाएँ आज भी उपयोग में हैं। जल संग्रहण तकनीक, स्थानीय होती हैं। इसका लाभ भी स्थानीय एवं सीमित क्षेत्र को होता है। स्थानीय निवासियों को जल संरक्षण का नियंत्रण देने से इन संसाधनों के अकुशल प्रबंधन एवं अतिदोहन कम होते हैं। अथवा पूर्णतः समाप्त हो सकते हैं।

बड़े समतल भूभाग में जल संग्रहण स्थल मुख्यतः अर्धचंद्राकार मिट्टी के गड्ढे अथवा निचले स्थान, वर्षा ऋतु में पूरी तरह भर जाने वाली नालियाँ प्राकृतिक जल मार्ग पर बनाए गए ***'चेक डैम'*** जो कंक्रीट अथवा छोटे कंकड़ पत्थरों द्वारा बनाए जाते हैं। इन छोटे बाँधों के अवरोध के कारण इनके पीछे मानसून का जल तालाबों में भर जाता है। केवल बड़े जलाशयों में जल पूरे वर्ष रहता है। परंतु छोटे जलाशयों में यह जल 6 महीने या उससे भी कम समय तक रहता है उसके बाद यह सूख जाते हैं।

इनका मुख्य उद्देश्य जल संग्रहण नहीं है परंतु जल–भौम स्तर में सुधार करना है। जल के भौम जल के रूप में संरक्षण के कई लाभ हैं। भौम जल से अनेक लाभ हैं। यह वाष्प बन कर उड़ता नहीं, परंतु यह आस–पास में फैल जाता है, बड़े क्षेत्र में वनस्पति को नमी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त इससे मच्छरों के जनन की समस्या भी नहीं होती। भौम जल मानव एवं जंतुओं के अपशिष्ट से झीलों तालाबों में ठहरे पानी के विपरीत संदूषित होने से अपेक्षाकृत सुरक्षित रहता है।

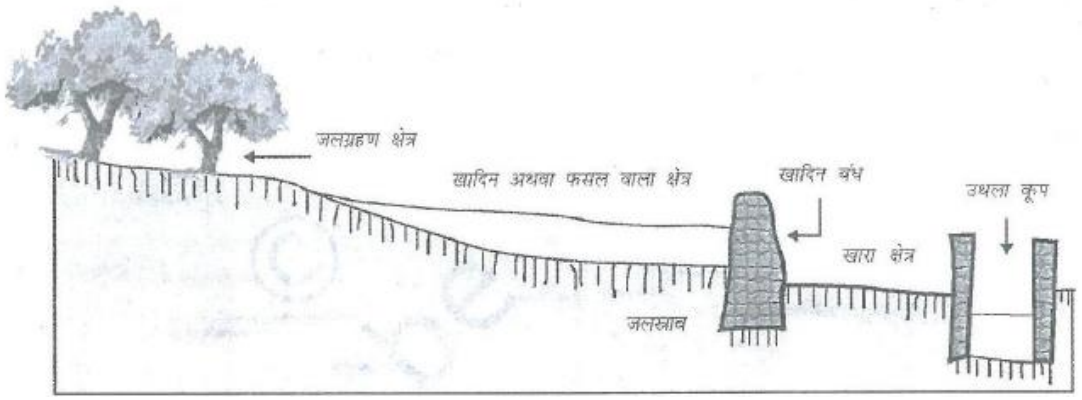

जल संग्रहण की पारंपरिक व्यवस्था–खादिन पद्वति का आदर्श व्यवस्थापन

कोयला एवं पेट्रोलियम प्रबन्धनः

इनके संपोषण के उपाय अपनाएँ तो इससे हमारी आवश्यकता की पूर्ति भी होती रहेगी। महत्वपूर्ण संसाधन जीवाश्म ईंधन अर्थात कोयला एवं पेट्रोलियम ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं। औद्योगिक क्रांति के समय से हम उत्तरोत्तर अधिक ऊर्जा की खपत कर रहे हैं। इस ऊर्जा का प्रयोग हम दैनिक ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति तथा जीवनोपयोगी पदार्थों के उत्पादन हेतु कर रहे हैं। ऊर्जा संबंधी यह आवश्यकता कोयला तथा पेट्रोलियम से प्राप्त होती है।

ऊर्जा स्रोतों का प्रबंधन अन्य संसाधनों की अपेक्षा कुछ भिन्न तरीके से किया जाता है। पेट्रोलियम एवं कोयला लाखों वर्ष पूर्व जीवों की जैव–मात्रा के अपघटन से प्राप्त होते हैं। अतः चाहे जितनी भी सावधानी से इनका उपयोग करें फिर भी यह स्रोत भविष्य में समाप्त हो जाएँगे। अतः तब ऊर्जा के विकल्पी स्रोतों की खोज करने की आवश्यकता होगी। यह संसाधन यदि वर्तमान दर से प्रयोग में आते रहे तो ये कितने समय तक उपलब्ध रहेंगे, इस बारे में विभिन्न आकलनों

के आधार पर कह सकते हैं कि हमारे पेट्रोलियम के संसाधन लगभग अगले 40 वर्षों में तथा कोयला अगले 200 वर्षो तक उपलब्ध रह सकते हैं।

परंतु जब कोयले एवं पेट्रोलियम की खपत के बारे में विचार करते हैं तो ऊर्जा के अन्य स्रोतों के विषय में विचार का एकमात्र आधार नहीं है क्योंकि कोयला एवं पेट्रोलियम जैव–मात्रा से बनते हैं। जिनमें कार्बन के अतिरिक्त हाइड्रोजन, नाइट्रोजन एवं सल्फर (गंधक) भी होते हैं। जब इन्हें जलाया जाता है तो कार्बन डाइऑक्साइड, जल, नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा सल्फर के ऑक्साइड बनते हैं। अपर्याप्त वायु (ऑक्सीजन) में जलाने पर कार्बन डाइऑक्साइड के स्थान पर कार्बन मोनोऑक्साइड बनाती है।

इन उत्पादों में नाइट्रोजन एवं सल्फर के ऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड विषैली गैसें हैं। कार्बन डाइऑक्साइड एक ग्रीन हाउस गैस है। कोयला एवं पेट्रोलियम पर विचार करने का एक अन्य दृष्टिकोण यह भी है कि ये कार्बन के विशाल भंडार हैं। इनकी संपूर्ण मात्रा का कार्बन जलाने पर कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित हो गया तो वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा अत्यधिक हो जाएगी जिससे तीव्र वैश्विक ऊष्मण होने की संभावना है। अतः इन संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भट्टा, बासुदेब (2010) रिमोट सेंसिंग डेटा से शहरी विकास और फैलाव का विश्लेषण।
2. थॉमस, वालिद (2014) स्थानीक रूप से जिले में कृषि सुविधाओं का विस्तार।
3. गैलस्टर, जॉर्ज, हैनसन (2001) भरतपुर जिले की धरातीलय कृषि की अवधारणा हाउसिंग पॉलिसी डिबेट।
4. अल्फान, एच (2003) भरतपुर जिले में भूमि उपयोग परिवर्तन और शहरीकरण।
5. सहसंबंध छवि विश्लेषण और छवि विभाजन का उपयोग करके ऑब्जेक्ट आधारित परिवर्तन का पता लगाना (2010–11)